इकाई 7 संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपीय संघ

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 अमेरिका के साथ भारत के संबंध

7.2.1 शीत युद्ध के दौर में संबंधों का विकास

7.2.2 शीत युद्ध की समाप्ति के बाद संबंध

7.2.3 परिवर्तन की शुरुआत

7.2.4 रक्षा सहयोग

7.2.5 पोखरण-II और उसके बाद

7.2.6 नई सहस्राब्दि में संबंध

7.2.7 11 सितंबर और उसके बाद

7.3 यूरोपीय संघ के साथ भारत के संबंध

7.3.1 राजनीतिक मतभेद

7.3.2 आर्थिक सहयोग

7.3.3 आर्थिक सीमाएँ

7.3.4 व्यापारिक विवाद

7.4 सारांश

7.5 अभ्यास

7.1 प्रस्तावना

आज की अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में विश्व की अनेक बड़ी शक्तियों में अमेरिका और यूरोपीय संघ का विशिष्ट स्थान है। सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति है। इसके पास ऐसी सैनिक क्षमताएँ हैं जिनसे वह समूचे संसार को नष्ट कर सकता है। साथ ही, यह विश्व का सबसे सम्पन्न राष्ट्र है। यूरोपीय संघ विश्व के सबसे बड़े आर्थिक गुटों में से एक है। इसकी सामूहिक आर्थिक सत्ता अमेरिका की अर्थव्यवस्था के बराबर है। इसके दो सदस्य देश - इंगलैंड और फ्रांस - परमाणु शक्तियाँ हैं। इस प्रकार, सैद्धांतिक दृष्टि से यूरोपीय संघ के पास सैनिक क्षमता और आर्थिक सम्पन्नता दोनों हैं। एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि यूरोपीय संघ के कई सदस्य देश उत्तर-एटलांटिक संधि संगठन (नाटो) के सदस्य रहे हैं।

भारत और अमेरिका के बीच रिश्ते वैसे सद्भावपूर्ण नहीं रहे हैं जैसे कि विश्व के दो महान लोकतांत्रिक देशों के बीच होने चाहिए। फिर भी, बीसवीं शताब्दी की समाप्ति के बाद से दोनों देश एक-दूसरे के करीब आए हैं। हालांकि पाकिस्तान के प्रति अमेरिका का झुकाव अभी बरकरार है जबकि भारत हर संभव प्रयास करने के बावजूद पाकिस्तान के साथ सामान्य दोस्ताना रिश्ते कायम नहीं कर पाया है। भारत ने यूरोपीय संघ के साथ धीरे-धीरे करीबी और मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित कर लिए हैं। दोनों पक्षों ने आपसी व्यापार बढ़ाने में दिलचस्पी दिखाई है। जून, 2000 से शुरू हुई भारत-यूरोपीय संघ शिखर बैठकों के बाद भारत और यूरोपीय संघ के बीच आर्थिक तथा राजनीतिक संबंधों में विस्तार और मज़बूती आने की आशा है।

इस इकाई में अमेरिका के साथ भारत के घटनापूर्ण रिश्तों और यूरोपीय संघ तथा इस आर्थिक गुट के अलग-अलग सदस्य देशों के साथ भारत के बढ़ते हुए सहयोग का विश्लेषण किया गया है।

7.2 अमेरिका के साथ भारत के संबंध

भारत और अमेरिका को विश्व का क्रमशः सबसे बड़ा और सबसे शक्तिशाली लोकतंत्र माना जाता है। इसलिए इन दो देशों के बीच संबंधों को विभिन्न देशों के बीच रिश्तों की एक दिलचस्प मिसाल के रूप में देखा जाता है। इन संबंधों का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि भारत की गिनती विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में होती है जबकि अमेरिका अपेक्षाकृत नई सभ्यता है। परंतु शासन व्यवस्था के अनुभव की दृष्टि से अमेरिका भारत के मुकाबले काफी पुराना है। 1947 में जब भारत ने स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में जन्म लिया तब तक अमेरिका डेढ़ सौ साल की उम्र पार कर चुका था। यही नहीं, भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक वह विश्व की महाशक्ति भी बन चुका था। इस प्रकार सभ्यता, शासन व्यवस्था और सत्ता संचालन जैसे पहलुओं को देखते हुए विश्व इतिहास के जटिलतम द्वि-पक्षीय संबंधों को भारत और अमेरिका के बीच संबंधों में शामिल किया जा सकता है। स्वतंत्रता के बाद भारत ने न केवल दो शक्तिशाली गुटों में से किसी भी गुट में शामिल नहीं होने का फैसला किया, बल्कि गुट-निरपेक्षता की नीति अपना ली।

अमेरिका ने जब भी सैनिक गुटों तथा सुरक्षा गठबंधनों के गठन को बढ़ावा दिया, भारत ने उनका विरोध किया। भारत 'दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन' (सिएटो) और 'मध्य संधि संगठन' (सेंटो) के गठन का विशेष रूप से आलोचक रहा है। पाकिस्तान इन दो संगठनों का सक्रिय सदस्य था और इन संगठनों के कारण शीत युद्ध भारत के द्वार तक आ गया।

विश्व में अनेक घटनाओं तथा सशस्त्र संघर्षों के बारे में अमेरिकी दृष्टिकोण गठबंधन राजनीति से प्रेरित रहा और भारतीय सोच का आधार गुटनिरपेक्ष नीति रही। इसलिए इस तरह के अधिकतर मुख्य मुद्दों पर भारत और अमेरिका का रवैया अलग-अलग रहा। औपनिवेशिक क्षेत्रों में उपनिवेशों का खात्मा, कोरियाई युद्ध, वियतनाम युद्ध, स्वेज़ नहर

संकट, हंगरी संकट, चेकोस्लोवाकिया संकट, और संयुक्त राष्ट्र में चीन की सदस्यता जैसे मसलों पर भारत और अमेरिका के बीच शीत युद्ध संबंधी मतभेद विशेष रूप से मुखर और ज़ोरदार ढंग से सामने आए। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़े सवालों पर भी भारत तथा अमेरिका के बीच गंभीर मतभेद रहे। ये थे - कश्मीर समस्या, पाकिस्तान को अमेरिकी शस्त्रों की बिक्री और परमाणु मसले।

- **कश्मीर समस्या** : 1947 में पाकिस्तान की शह पर कश्मीर पर हुए कबाइलियों के हमले से कश्मीर समस्या शुरू हुई। भारत और पाकिस्तान के बीच पहली लड़ाई भारत की आज़ादी के तत्काल बाद ही उस समय छिड़ी जब कश्मीर के महाराज कश्मीर के भारत में विलय पर सहमत हो गए और उन्होंने भारत से सैनिक सहायता का अनुरोध किया। अमेरिका ने पाकिस्तानी हमले को नहीं पहचाना, भारत तथा पाकिस्तान दोनों पर हथियारों का प्रतिबंध लागू कर दिया और संयुक्त राष्ट्र के उस प्रस्ताव का समर्थन किया जिसमें हमले की निंदा नहीं की गई। भारत ने शिकायत की कि अमेरिका ने अपनी नीति के ज़रिए आक्रामक और आक्रांत को एक तराज़ू पर तोला है। 1965 में पाकिस्तान के दूसरे आक्रमण के समय भी अमेरिका ने इसी तरह का रवैया अपनाया। 1971 में तीसरे भारत-पाक युद्ध के दौरान पाकिस्तान की ओर अमेरिका का झुकाव भारत के प्रति शत्रुता का कृत्य था। परंतु लड़ाई में भारत की विजय के बाद अमेरिका शिमला समझौते का समर्थन करने लगा जिसमें आपसी बातचीत से समस्या को हल करने की बात कही गई थी। इसके बावजूद अमेरिका कश्मीर को विवादग्रस्त क्षेत्र मानता रहा और उसने भारत का यह दृष्टिकोण स्वीकार नहीं किया कि कश्मीर उसका अभिन्न अंग है।

- **अमेरिकी हथियारों की सप्लाई** : पहले भारत-पाक युद्ध के छह वर्ष बाद 1954 में अमेरिका ने पाकिस्तान के साथ पारस्परिक रक्षा समझौते पर हस्ताक्षर किए। 1959 में उसने सैनिक सहयोग के एक और समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस बीच, पाकिस्तान सिएटो और सेंटो का सदस्य बन गया। इसके फलस्वरूप पाकिस्तान को अमेरिका से लाखों डॉलर सैनिक सहायता के रूप में मिले। इस सहायता के बहुत बड़े हिस्से का इस्तेमाल अमेरिका से उन्नत किस्म के हथियार खरीदने पर किया गया। भारत ने बार-बार अमेरिका को आगाह किया कि हथियार देने की उसकी नीति से उपमहाद्वीप में शस्त्रों की होड़ को बढ़ावा मिल रहा है और क्षेत्रीय अस्थिरता पैदा हो रही है। अमेरिका आश्वासन देता रहा कि पाकिस्तान को हथियार भारत के खिलाफ इस्तेमाल करने के लिए नहीं बल्कि साम्यवाद को बढ़ने से रोकने के लिए दिए जा रहे हैं। परंतु पाकिस्तान ने इन हथियारों का इस्तेमाल भारत के साथ लड़ाइयों में किया।

- **परमाणु मसले** : 1964 में चीन के परमाणु शक्ति बन जाने के बाद से ही भारत-अमेरिकी संबंधों में परमाणु समस्या ने प्रमुख स्थान ले लिया। अमेरिका को शक था कि भारत भी चीन का अनुसरण करते हुए अपना बम तैयार कर लेगा जिससे परमाणु शस्त्रों के प्रसार में और वृद्धि होगी। अमेरिका ने अन्य कई देशों के साथ मिलकर परमाणु प्रसार की रोकथाम की दिशा में प्रयास शुरू कर दिए जिनके फलस्वरूप 1968

में परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर किए गए। भारत ने इसमें शामिल होने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि इस संधि में उन देशों के साथ भेदभाव किया गया है जो परमाणु हथियारों से संपन्न नहीं हैं। इसमें अन्य देशों को तो परमाणु शक्ति बनने से रोका गया है परंतु पाँच परमाणु शक्ति संपन्न देशों - अमेरिका, सोवियत संघ, फ्रांस, इंगलैंड और चीन - को परमाणु प्रसार की छूट दी गई है। इस भेदभावपूर्ण संधि को नकारते हुए भारत ने 1974 में शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट (पी.एन.ई) कर दिया। इससे भारत और अमेरिका के रिश्तों में एक बार फिर राजनीतिक खटास आ गई क्योंकि यह विस्फोट 1971 के युद्ध में भारत की विजय के लगभग 3 वर्ष बाद तथा हिंद-चीन से अमेरिकी फौजों की वापसी के कारण अमेरिका की स्थिति दुर्बल हो जाने के दौरान किया गया था।

शीत युद्ध के दौर में सैनिक दूरियों तथा राजनीतिक मतभेदों के बावजूद दोनों देशों के बीच अन्य क्षेत्रों में अच्छे संबंध बने रहे। भारत और अमेरिका ने कभी भी एक-दूसरे को दुश्मन नहीं माना। वास्तव में 1970 के दशक के शुरू में जब भारत-सोवियत मैत्री संधि के साथ-साथ जब चीन और अमेरिका के बीच दोस्ती का दौर शुरू हुआ तो भारत तथा अमेरिका के बीच राजनीतिक खाई और चौड़ी हो गई। परंतु इस अप्रिय दौर में भी आपसी संबंधों में कोई गंभीर दरार नहीं पड़ी। शीत युद्ध के वर्षों में भी भारत को सूखे तथा अकाल के दौरान खाद्य सहायता और सांकेतिक आर्थिक सहायता मिली। हालांकि अमेरिका ने कभी-कभी खाद्य सहायता को राजनीतिक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया ताकि भारत में असंतोष पैदा हो लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत को इस अमेरिकी सहायता से फायदा भी हुआ।

7.2.1 शीत युद्ध के दौर में संबंधों का विकास

एक स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में भारत का प्रवेश और विश्व की तत्कालीन दो महाशक्तियों - अमेरिका तथा सोवियत संघ - के बीच शीत युद्ध का प्रारंभ लगभग एक-साथ ही हुआ। दोनों शक्तियों में विश्व-भर में अपना प्रभाव फैलाने की होड़ छिड़ी तो भारत के सामने एक कठिन प्रश्न खड़ा हो गया कि वह शीत युद्ध में किसका साथ दे। प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने किसी का भी पक्ष लेने से इनकार किया और गुटनिरपेक्षता की नीति की घोषणा की। इस नीति ने शीत युद्ध के नैतिक आधार को चुनौती दी, शीत युद्ध की रोकथाम की माँग की और ऐसा रवैया अपनाने का रास्ता चुना जिससे भारत, अमेरिका तथा सोवियत संघ, दोनों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध बनाए रख सके। इसके बावजूद अमेरिका ने भारत की नीति को पसंद नहीं किया। उसने पाकिस्तान का साथ दिया और भारत-विरोधी रुख अपनाया।

7.2.2 शीत युद्ध की समाप्ति के बाद संबंध

हालांकि 1980 के दशक के मध्य में भूतपूर्व सोवियत संघ में गोर्बाचोफ के सत्ता में आने के समय से ही शीत युद्ध में ढिलाई आने लगी थी, परंतु दिसंबर 1991 में सोवियत

संघ के बिखरने के साथ शीत युद्ध पूरी तरह से समाप्त हो गया। शीत युद्ध में ढिलाई आने के दौर में ही अमेरिका के साथ भारत के संबंध सुधर गए थे, परंतु सोवियत संघ के बिखराव ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में अभूतपूर्व अनिश्चितताओं को जन्म दिया, जिनमें भारत-अमेरिकी संबंध भी शामिल थे।

जब अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति के रूप में उभरा तो उस समय साफ लग रहा था कि वह विश्व-संबंधों में भारी बदलाव के उस दौर में भारत के साथ अपने संबंधों पर ध्यान नहीं दे पाएगा। कुछ विशेषज्ञों की राय थी कि शीत युद्ध के दिनों में दक्षिण एशिया कम प्राथमिकता वाला क्षेत्र था और ऐसी कोई संभावना नहीं है कि शीत युद्ध के बाद के दौर के नए संदर्भों में इसे कोई ऊँची प्राथमिकता मिल पाएगी। वास्तव में जब बिल क्लिंटन शीत युद्ध के बाद के युग के पहले अमेरिकी राष्ट्रपति बने तो भारत को लगा कि अमेरिका के साथ उसके संबंध अनिश्चितता के दौर में पहुँच गए हैं। नए विदेश सह-मंत्री रोबिन राफेल ने, जो दक्षिण एशिया के प्रभारी थे, कश्मीर के भारत में विलय की वैधता को चुनौती देकर भारत-अमेरिकी संबंधों में नई दरारें खड़ी कर दीं। यही नहीं, अमेरिका ने ओमनीबस ट्रेड ऐक्ट की सुपर 301 धारा के अंतर्गत भारत को वाणिज्य विभाग की निगरानी सूची में डाल दिया। तब भारत के लिए संतोष की एकमात्र बात यही थी कि शीत युद्ध के बाद की परिस्थितियों में अमेरिका के लिए चीन तथा पकिस्तान, दोनों का सामरिक महत्व समाप्त हो गया था।

7.2.3 परिवर्तन की शुरुआत

जब क्लिंटन सरकार सोवियत संघ के बिखराव से उत्पन्न विश्व स्थितियों से निपटने में व्यस्त थी तो अमेरिकी नीति-निर्धारकों का ध्यान भारत-अमेरिकी संबंधों के बारे में नई दृष्टि विकसित करने की तरफ गया। एशिया सोसायटी और कारनेगी एंडोमेंट फॉर इंटरनेशनल पीस ने ऐसी रिपोर्टें प्रस्तुत कीं जिनमें भारत और अमेरिका के बीच गहरे तथा सहयोगपरक संबंध विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया। दो घटनाओं ने अमेरिका की भारत नीति को प्रभावित किया। पहली यह कि सोवियत संघ के बिखराव से कुछ ही महीने पहले भारत ने आर्थिक उदारीकरण का सूत्रपात किया। आर्थिक खुलेपन के कारण विदेशी व्यापारी समुदाय के लिए विशाल मध्यम वर्ग वाले भारतीय बाज़ार का आकर्षण काफी बढ़ गया। दूसरी घटना थी - शीत युद्ध के बाद के अमेरिका की विदेश नीति प्रयासों में राष्ट्रपति क्लिंटन का आर्थिक मुद्दों पर बल देना।

इस समूचे घटनाक्रम की पृष्ठभूमि में अमेरिकी वाणिज्य विभाग ने विकासशील विश्व के ऐसे दस उभरते हुए बड़े बाज़ारों की पहचान की जिनके साथ अमेरिका अपने व्यापार एवं निवेश में वृद्धि कर सके। प्रधानमंत्री नरसिंहाराव ने अमेरिका के साथ भारत के संबंधों को नया रूप देने की दिशा में पहल की और मई 1994 में वाशिंगटन की यात्रा की। उनकी इस यात्रा के दौरान आर्थिक मुद्दे छाए रहे और उन्होंने भारत तथा अमेरिका के बीच व्यापार एवं निवेश के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाने का आह्वान किया। नवंबर 1994 में अमेरिका के वाणिज्य उपमंत्री (Under Secretary) जेफरी गार्टन भारत आए और अमेरिकी वाणिज्य मंत्री की भारत यात्रा का आधार तैयार किया। जनवरी 1995 के तीसरे सप्ताह में अपनी भारत यात्रा के दौरान वाणिज्य मंत्री रोनाल्ड ब्राउन ने वाणिज्य मंत्री श्री प्रणव

मुखर्जी के साथ दोनों देशों के बीच 'वाणिज्य गठबंधन ' बनाने के एक सहमति-पत्र पर हस्ताक्षर किए। इसका उद्देश्य दोनों देशों के बीच गहरे व्यापारिक संबंध बनाने के लिए विचार-विमर्श का विशाल मंच प्रदान करना था। श्री ब्राउन के साथ 25 बड़ी अमेरिकी कंपनियों के मुख्य कार्यकारी अधिकारी भी यहाँ आए जिन्होंने चार दिन के अपने प्रवास के दौरान भारत के साथ ग्यारह व्यापारिक समझौते किए। उसके बाद से आर्थिक पहलुओं के आधार पर भारत और अमेरिका एक-दूसरे के करीब आते रहे हैं। अमेरिका न केवल भारत में पूँजी-निवेश का सबसे बड़ा स्रोत बन गया है बल्कि भारत से सबसे अधिक निर्यात भी अमेरिका को हो रहा है।

7.2.4 रक्षा सहयोग

शीत युद्ध के बाद के दौर के भारत-अमेरिकी संबंधों में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन है - दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग में वृद्धि। शीत युद्ध के दिनों में इस तरह के सहयोग की बात करना भी संभव नहीं था। इस दिशा में पहली उल्लेखनीय उपलब्धि थी - 1995 के शुरू में अमेरिकी रक्षा मंत्री विलियम पेरी की भारत यात्रा। उन्होंने भारत के रक्षा मंत्री के साथ रक्षा सहयोग के एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिससे शीत युद्ध के बाद की अनिश्चितताओं से निपटने के लिए आपसी सुरक्षा सहयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ। यद्यपि इसमें किसी गठबंधन का संकेत नहीं था, परंतु इससे कम से कम सैद्धांतिक तौर पर एक ऐसे क्षेत्र में सहयोग का रास्ता खुला, जो अब तक निषिद्ध था।

अमेरिकी-पाकिस्तानी सामरिक मतभेदों की पृष्ठभूमि में यह समझौता उपमहाद्वीप की सुरक्षा स्थिति में एक महत्वपूर्ण कदम था। पाकिस्तान 1990 से प्रेसलर संशोधन के अंतर्गत हथियारों की खरीद पर प्रतिबंध की मार झेल रहा था। हालांकि ब्राऊन संशोधन के जरिए पाकिस्तान को इस प्रतिबंध से एक समय की छूट दी गई, लेकिन अफगानिस्तान से सोवियत सेनाओं की वापसी के बाद अमेरिका के लिए पाकिस्तान की सामरिक महत्ता काफी कम हो गई।

7.2.5 पोखरण-II और उसके बाद

आर्थिक सहयोग में वृद्धि और रक्षा सहयोग की शुरुआत का अर्थ यह नहीं था कि शीत युद्ध के बाद के युग में दोनों देशों के बीच कोई मतभेद नहीं रहा। कश्मीर मसला, जो पाकिस्तान समर्थित सीमा-पार आतंकवाद के कारण अब जटिल हो चुका है, भारत-अमेरिका संबंधों में खलल डालता रहा है। भारत चाहता था कि अमेरिका पाकिस्तान को आतंकवादी देश घोषित करे परंतु अमेरिका ने अपने खुफिया विभागों और भारत सरकार द्वारा पर्याप्त सुबूत पेश किए जाने के बावजूद ऐसा नहीं किया। दूसरी ओर, कई अमेरिकी सांसद कश्मीर में मानवाधिकारों के हनन का मामला उछालते रहे ताकि भारत में असंतोष पैदा किया जा सके।

क्लिंटन सरकार द्वारा भारत और पाकिस्तान के लिए परमाणु कार्यक्रम बंद करने तथा प्रतिष्ठान बंद करने की नीति अपनाए जाने के कारण दोनों देशों के बीच परमाणु मसलों

पर भी विवाद जारी रहा। भारत को अमेरिकी परमाणु अप्रसार नीति के बारे में मुख्य रूप से चार आपत्तियाँ थीं। पहली यह कि 1980 के दशक में परमाणु हथियार बनाने की क्षमता प्राप्त करने की पाकिस्तानी कोशिशों के बारे में खुफिया रिपोर्टों के बावजूद अमेरिका ने पाकिस्तान को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देना जारी रखा। जब प्रेसलर संशोधन लागू किया गया तब पाकिस्तान परमाणु शस्त्र क्षमता प्राप्त कर चुका था। संशोधन में यह व्यवस्था थी कि पाकिस्तान को अमेरिकी सहायता जारी किए जाने से पहले अमेरिका के राष्ट्रपति यह प्रमाणित करें कि पाकिस्तान परमाणु हथियार (या परमाणु शस्त्र टेक्नोलॉजी) प्राप्त करने का इच्छुक नहीं है। इसके अलावा, क्लिंटन सरकार ने ही ब्राऊन संशोधन पारित किया जिसके जरिए प्रेसलर संशोधन को कमज़ोर कर दिया गया और परमाणु प्रसार करने वाले देश को लाभ पहुँचाया गया। भारत ने अमेरिका पर डब्ल्यू.एम.डी. कार्यक्रमों में भारत-पाकिस्तान के सहयोग को देखते हुए निष्क्रिय बने रहने का भी आरोप लगाया। दूसरी आपत्ति यह कि अमेरिका ने पाकिस्तानी परमाणु कार्यक्रम के प्रति ढिलाई दिखाते हुए भी भारत के स्वदेशी परमाणु एवं प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के बारे में कड़ा रुख अपनाया। उसने भारत और रूस के बीच क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन समझौता नहीं होने दिया। तीसरी शिकायत यह थी कि अमेरिका ने कई बार दक्षिण एशियाई परमाणु समस्या के बारे में चीन के साथ सुर मिलाकर बात की जबकि भारत का मानना था कि चीन के परमाणु हथियार इस क्षेत्र में परमाणु प्रसार समस्या का हिस्सा थे। अंतिम आपत्ति यह थी कि अमेरिका एक सच्ची पक्षपातहीन व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि का समर्थन करने की भारत की निष्ठा को समझने में असफल रहा और उसने अन्य बातों के साथ-साथ भारत के परमाणु कार्यक्रम पर निशाना साधने के लिए एक बार फिर भेदभावपूर्ण संधि तैयार करने का प्रयास किया।

अमेरिका की भेदभावपूर्ण परमाणु अप्रसार नीति और चीन तथा परमाणु शस्त्र कार्यक्रमों के बारे में चीन तथा पाकिस्तान के बीच बढ़ते सहयोग के कारण भारत के सुरक्षा वातावरण के परमाणुकरण के बीच भारत ने मई 1998 में कुछ परमाणु परीक्षण किए। पोखरण-II नाम से जाने जाने वाले इन परीक्षणों से दक्षिण एशिया में खुले परमाणु युग का सूत्रपात हो गया क्योंकि पाकिस्तान ने भी भारत के पदचिह्नों पर चलते हुए अपने अनेक परमाणु परीक्षण कर दिए। अमेरिका ने परमाणु परीक्षणों को लेकर व्यापक प्रतिबंधों की घोषणा की और भारत-अमेरिकी संबंधों पर फिर से काले बादल मंडराने लगे। हालांकि भारत ने ऐलान कर दिया कि वह अब और कोई परीक्षण नहीं करेगा, परंतु अमेरिका ने भारत पर परमाणु अप्रसार संधि (एन.पी.टी) तथा व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (सी.टी.बी.टी) पर हस्ताक्षर करने के लिए दबाव जारी रखा।

7.2.6 नई सहस्राब्दि में संबंध

भारत-अमेरिकी संबंधों पर छाए काले बादल अधिक समय तक मौजूद नहीं रह पाए। क्लिंटन प्रशासन ने जल्दी ही महसूस किया कि उपमहाद्वीप में उभरी परमाणु स्थिति को पहली जैसी स्थिति में नहीं ले जाया जा सकता है। अमेरिकी प्रतिबंध, एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में गिरावट और विश्व-व्यापी मंदी का दौर भी भारतीय अर्थव्यवस्था के उछाल को नहीं

रोक पाए। अमेरिका को आर्थिक रूप से जीवंत, लोकतांत्रिक आधार पर स्थिर और सैनिक दृष्टि से शक्तिशाली भारत को अपने साथ रखने में लाभ दिखाई दिया। राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने मार्च 2000 में भारत की यात्रा की और दोनों देशों के बीच नए संबंधों की आधारशिला रखी।

1999 के मध्य में भारत और पाकिस्तान के बीच हुए कारगिल युद्ध के बारे में अमेरिकी दृष्टिकोण से भारत-अमेरिकी रिश्तों में एक और बाधा दूर हो गई और राष्ट्रपति श्री बिल क्लिंटन का भारत में खुले दिल से स्वागत किया गया। भारत ने पाकिस्तान पर 1999 में कश्मीर के कारगिल क्षेत्र में अपनी आक्रामक कार्रवाई बंद करने के लिए क्लिंटन के दबाव की सराहना की और अमेरिका ने भारत के परमाणु शक्ति होने के बावजूद नियंत्रण रेखा को पार न करके संयम बरतने तथा कारगिल युद्ध में जिम्मेदारी भरा आचरण करने के लिए भारत की सराहना की। क्लिंटन ने इस क्षेत्र की यात्रा के दौरान भारत में 5 दिन तथा पाकिस्तान में सिर्फ चार घंटे बिताकर यह जता दिया कि नई सहस्राब्दि में अमेरिका किसे अधिक महत्व देगा। क्लिंटन की यात्रा के दौरान दोनों देशों के बीच अनेक समझौतों पर हस्ताक्षर हुए और सबसे महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक थी - संयुक्त वक्तव्य जारी होना जिसमें संबंधों की भावी परिकल्पना शामिल थी।

बिल क्लिंटन चूँकि राष्ट्रपति के रूप में अपने कार्यकाल के अंतिम चरण में भारत आए थे, इसलिए कुछ विशेषज्ञों ने आशंका प्रकट की कि अगले राष्ट्रपति चुनावों के बाद भारत-अमेरिकी संबंध फिर से अनिश्चितता के दौर में पहुँच जाएँगे। परंतु जैसा कि इतिहास साक्षी है, 2000 के राष्ट्रपति चुनावों में रिपब्लिकन उम्मीदवार जार्ज डब्ल्यू.बुश की विजय के बाद भारत-अमेरिकी रिश्ते नई बुलंदियाँ छूने लगे। राष्ट्रपति बुश ने चीन को सामरिक प्रतिद्वंद्वी और भारत को लोकतांत्रिक सामरिक सहभागी माना। उनकी राय में भारत एक प्रमख विश्व-शक्ति है और इक्कीसवीं शताब्दी में एशियाई तथा अंतर्राष्ट्रीय स्थिरता की दिशा में भारत-अमेरिकी संबंधों की महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। राष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्र रक्षा (एन.एम.डी) की बुश की अवधारणा के प्रति भारत के त्वरित समर्थन ने समूचे विश्व को चौंका दिया। परंतु इससे भारत और अमेरिका के बीच अधिक गहरे सामरिक संबंधों ने जन्म लिया।

7.2.7 11 सितंबर और उसके बाद

जब भारत-अमेरिकी संबंध सुधर रहे थे और बुश सरकार भारत पर लगाए गए परमाणु-संबंधी प्रतिबंध हटाने वाला था तथा साथ ही अमेरिका और पाकिस्तान के बीच दूरी बढ़ रही थी, तो 11 सितंबर 2001 को अमेरिका पर आतंकवादी हमले ने समूची दुनिया को दहला दिया। भारत ने आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी लड़ाई के प्रति बिना शर्त समर्थन की घोषणा की। परंतु जब बुश ने अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष में पाकिस्तान को अग्रणी देश बना दिया तो भारत और अमेरिका के बीच भावी संबंधों को लेकर फिर से आशंकाएँ प्रकट की जाने लगीं। भारत में आतंकवादी हमलों में वृद्धि, विशेष कर अक्तूबर 2001 में जम्मू-कश्मीर विधानसभा और 13 दिसंबर 2001 को भारतीय संसद पर हमले

के पाक-समर्थित आतंकवादियों के असफल प्रयास के बाद भारत-अमेरिकी संबंधों में कड़वाहट पैदा हो गई। अमेरिका आतंकवाद के खिलाफ संघर्ष में पाकिस्तान के सहयोग को महत्वपूर्ण मानता रहा और उसे भारत के विरुद्ध सीमा पार आतंकवाद का समर्थन करने से रोक पाने में असफल रहा। 13 दिसंबर की घटना के बाद सीमा पर भारत और पाकिस्तान द्वारा सेनाओं की तैनाती तथा अमेरिका द्वारा भारत-पाक वार्ता पर बल दिए जाने का भारत में यह अर्थ लगाया गया कि अमेरिका आतंकवाद से निपटने में दोहरे मानदंड अपना रहा है। इस बीच, भारत ने पाकिस्तान और भारत के बीच बस, रेल तथा वायु यातायात को रद्द कर दिया।

परंतु कश्मीर में सीमा-पार आतंकवाद पर विश्व समुदाय का ध्यान आकर्षित करने के बाद भारत ने सेनाओं को हटा लेने और सीमा के आसपास स्थिति सामान्य बनाने का फैसला किया। इस नीति से उपमहाद्वीप में पूर्ण युद्ध छिड़ने और उसके परमाणु युद्ध में बदलने के खतरे के बारे में अमेरिका की चिंता भी दूर हो गई। इराक के घटनाक्रम (जिसमें अमेरिका ने इराक में सैनिक हस्तक्षेप किया) से भी भारत-अमेरिकी संबंधों में राजनीतिक व्यवधान आया। इराक में युद्ध समाप्त करने और वहाँ से गठबंधन सेनाएँ हटाने की माँग करने वाले भारतीय सर्वसम्मत प्रस्ताव को भी अमेरिका ने सही नहीं माना। बाद में भारत ने इराक में स्थिरता लाने के प्रयासों के सिलसिले में अपनी फौजें भेजने से यह कहते हुए इनकार कर दिया कि इसके लिए संयुक्त राष्ट्र की ओर से कोई अनुरोध नहीं किया गया है और भारतीय सेनाएँ किसी अन्य (यानी अमेरिका) की कमान के अधीन काम नहीं कर सकतीं। भारत ने कहा कि वह संयुक्त राष्ट्र द्वारा कहे जाने की स्थिति में ही इस मसले पर विचार कर सकता है।

7.3 यूरोपीय संघ के साथ भारत के संबंध

यूरोपीय संघ इस समय विश्व के सबसे सफल क्षेत्रीय संगठनों में से एक है। यह विश्व का सबसे बड़ा व्यापारिक गुट है जो विश्व व्यापार के पाँचवें हिस्से के लिए ज़िम्मेदार है। यह विकासशील देशों के लिए सबसे बड़ा बाज़ार होने के साथ-साथ विकास सहायता का प्रमुख स्रोत भी है।

इसके दो सदस्य देश - फ्रांस और इंगलैंड - परमाणु शक्ति हैं तथा सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्य हैं। एक अन्य सदस्य देश अर्थात जर्मनी सुरक्षा परिषद का विस्तार होने पर उसकी स्थायी सदस्यता का प्रबल दावेदार है। संघ के चार सदस्य देश जी-8 ग्रुप के सदस्य हैं और सभी सदस्य आज के विश्व की विकसित अर्थव्यवस्था वाले देश हैं।

मार्च 1957 में रोम की संधि से यूरोपीय समुदाय की स्थापना हुई। यही लंबी प्रक्रिया के बाद अंततः यूरोपीय संघ में परिवर्तित हुआ। यूरोपीय संघ का जन्म यूरोपीय देशों के बीच व्यापारिक और यात्रा संबंधी बाधाएँ दूर करने तथा समान मुद्रा अपनाने की इच्छा के फलस्वरूप हुआ। इससे आगे चलकर राजनीतिक संघ बनने का रास्ता तैयार हो गया है।

उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (नाटो) को सैनिक तथा सुरक्षा संबंधी पहलुओं पर ध्यान देने और यूरोपीय समुदाय (अब यूरोपीय संघ) को सदस्य देशों के बीच आर्थिक एवं व्यापारिक सहयोग बढ़ाने का दायित्व सौंपा गया। परंतु व्यापक स्तर पर इन दोनों संगठनों का उद्देश्य अंततः शीत युद्ध राजनीति के मुद्दों से निपटना रहा है।

शीत युद्ध के दौर में भूतपूर्व यूरोपीय समुदाय के सदस्य अमेरिकी नेतृत्व वाले पश्चिमी गुट में शामिल थे। जब यूरोपीय समुदाय राजनीति और विदेश नीति के साझा मंच की तलाश में प्रयासरत था तब यह स्पष्ट था कि न तो संगठन और न ही निजी तौर पर उसके सदस्य देश भारत के साथ सहयोग बढ़ाएँगे क्योंकि भारत गुटनिरपेक्ष विदेश नीति पर चल रहा था। दूसरी बात यह थी कि जब तक इंगलैंड यूरोपीय समुदाय का सदस्य नहीं था, समुदाय के तत्कालीन सदस्य भारत सहित दक्षिण एशिया की समस्याओं को हमेशा इंगलैंड तथा अमेरिका की ज़िम्मेदारी मानते थे और उनमें कोई रुचि नहीं लेते थे। 1973 में इंगलैंड के यूरोपीय समुदाय में शामिल होने के बाद ही इस संगठन के विदेश नीति संबंधी दृष्टिकोण में दक्षिण एशिया तथा भारत के मामलों का कुछ हद तक समावेश होने लगा। इसकी शुरुआत 1973 में भारत तथा यूरोपीय समुदाय के बीच व्यापारिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किए जाने के साथ हुई। तीसरी बात यह थी कि भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था, समाजवादी वक्तव्यों और बड़े पैमाने पर आर्थिक मसलों के कारण भारत तथा यूरोपीय समुदाय के बीच सहयोग की गुंजाइश बहुत कम थी। लेकिन 1962 में भारत यूरोपीय समुदाय को सबसे पहले मान्यता देने वाले एशियाई देशों में से एक था और समुदाय के साथ भारत के आर्थिक और व्यापारिक रिश्ते संगठन की क्षमता पर ही आधारित थे। जैसे-जैसे समुदाय को राजनीतिक आयाम मिला, वैसे-वैसे भारत ने उसके साथ गहरे राजनीतिक रिश्ते कायम करने का फैसला किया। यूरोपीय समुदाय के सभी देश लोकतांत्रिक हैं और एक जीवंत लोकतंत्र के नाते भारत को उनके साथ संबंध बनाने में कोई समस्या नहीं थी। इसी आधार पर 1983 में भारत तथा यूरोपीय समुदाय के बीच औपचारिक तौर पर राजनीतिक वार्ता शुरू करने का निर्णय किया गया। भारत और यूरोपीय संघ के संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक संस्थागत व्यवस्थाएँ मौजूद हैं। ये हैं - भारत-यूरोपीय समुदाय शिखर बैठकें, भारत-यूरोपीय संघ त्रि-स्तरीय मंत्री बैठकें, वरिष्ठ अधिकारियों की बैठकें, भारत-यूरोपीय संघ संयुक्त आयोग, आतंकवाद पर भारत-यूरोपीय संघ संयुक्त कार्यदल, उपभोक्ता विषयों पर भारत-यूरोपीय संघ संयुक्त कार्यदल, भारत-यूरोपीय संघ गोलमेज सम्मेलन आदि।

परंतु लोकतांत्रिक देशों में आंतरिक राजनीति की तरह लोकतांत्रिक देशों के बीच भी राजनीतिक मसलों पर मतभेद बने रहते हैं। भारत तथा यूरोपीय समुदाय इस बात के अपवाद नहीं हैं।

7.3.1 राजनीतिक मतभेद

1993 तक यूरोपीय समुदाय और 1993 के बाद से यूरोपीय संघ (1 नवंबर 1993 को यूरोपीय संघ अस्तित्व में आया) तथा भारत के बीच राजनीतिक मतभेदों के मुख्यतः तीन क्षेत्र रहे हैं। ये हैं - कश्मीर समस्या, परमाणु समस्या और मानव अधिकारों का मसला।

यूरोपीय समुदाय के प्रारंभिक वर्षों में कश्मीर मसले को इंगलैंड तथा अमेरिका की जिम्मेदारी माना जाता था। परंतु बाद में, विशेष कर शिमला समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद यूरोपीय समुदाय ने भारत और पाकिस्तान के बारे में एक जैसा रुख अपनाने की नीति स्वीकार कर ली। कश्मीर में आतंकवाद और उग्रवाद उभरने के बाद यूरोपीय संघ आतंकवाद पर चिंता तो जताता है परंतु साथ ही भारतीय सुरक्षा बलों द्वारा स्थिति को संभालने के तरीकों पर असंतोष प्रकट करता है। इस बारे में संगठन की ओर से जो वक्तव्य जारी किया गया, उसकी भाषा सावधानीपूर्वक तैयार की गई जिसमें 'कश्मीर में जारी हिंसा और मानव अधिकारों के दुरुपयोग की निंदा ' और ऐसी मांग की गई कि ऐसे तरीकों से आतंकवाद का विरोध किया जाए जिससे 'मानव अधिकारों तथा कानून के शासन के प्रति पूर्ण सम्मान का उल्लंघन न हो '।

दूसरे शब्दों में वह ऐसा रवैया अपनाने से कतराता है जिससे भारत या पाकिस्तान के साथ संबंधों में खटास आए। परंतु जघन्य आतंकवाद के प्रति यूरोपीय संघ का रवैया भारत को पसंद नहीं है। वह यूरोपीय संघ को हमेशा यह समझाने के प्रयास करता रहता है कि वह इस मसले पर कड़ा रुख अपनाए। सितंबर, 2001 में अमेरिका में आतंकवादी हमले के बाद यूरोपीय संघ को सीमा पार से आतंकवाद को बढ़ावा देने में पाकिस्तान की भूमिका के खतरों के बारे में सचेत हो जाना चाहिए था परंतु पाकिस्तान को जल्दी ही आतंकवाद के खिलाफ अमेरिकी-नेतृत्व में चल रहे अभियान का अग्रणी देश बना दिया गया। इस कारण लगता है कि कश्मीर में आतंकवाद के बारे में कड़ा रुख अपनाने के लिए यूरोपीय संघ सहित अंतर्राष्ट्रीय समुदाय को भारत द्वारा की गई अपील अनसुनी रह गई है।

मानव अधिकारों के प्रश्न पर भी भारत तथा यूरोपीय संघ के बीच मतभेद हैं। भारत के साथ बातचीत के दौरान यूरोपीय संघ अक्सर कश्मीर में मानव अधिकारों के हनन का मामला उठाता है। भारत का मानना है कि यूरोपीय संघ के रवैये में आतंकवादी गुटों द्वारा मानव अधिकारों के घोर उल्लंघन पर ध्यान नहीं दिया जाता और न ही आतंकवादी विवशताओं और सीमाओं को समझा जाता है।

यूरोपीय संघ तथा भारत के बीच राजनीतिक मतभेदों का तीसरा महत्वपूर्ण आधार परमाणु प्रसार का प्रश्न है। यूरोपीय संघ के सभी सदस्यों ने परमाणु अप्रसार संधि (एन.पी.टी.) पर हस्ताक्षर किए हुए हैं। भारत इस संधि को भेदभावपूर्ण मानता है। व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (सी.टी.बी.टी.) पर हस्ताक्षर को लेकर भी दोनों पक्षों में मतभेद हैं। यूरोपीय संघ चाहता है कि भारत इन दोनों संधियों पर हस्ताक्षर करे। परंतु भारत ने इसकी परवाह किए बिना मई 1998 में कई परमाणु परीक्षण किए और अपने को परमाणु शस्त्र संपन्न शक्ति घोषित कर दिया। यूरोपीय संघ ने भारत के परमाणु परीक्षणों की कड़ी निंदा की परंतु अमेरिका तथा जापान की तरह प्रतिबंध नहीं लगाए। वैसे यूरोपीय संघ ने दक्षिण एशिया में परमाणु संयम बरतने का अनुरोध करने में जी-8 संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का साथ दिया। परंतु बाद में संघ के कुछ सदस्य देशों ने स्पष्ट रूप से कहा कि अपनी सुरक्षा के बारे में फैसला करने का भारत को पूरा अधिकार है।

7.3.2 आर्थिक सहयोग

यूरोपीय संघ एकसमान विदेश एवं सुरक्षा नीति विकसित करने की दिशा में अपने पूर्ववर्ती रूप यूरोपीय समुदाय की तुलना में ज़्यादा ज़ोरदार प्रयास कर ही रहा है, परंतु वास्तव में इस संगठन का आर्थिक प्रभाव ही इसके अस्तित्व और विकास की कुंजी है। वैश्वीकरण की ओर बढ़ती दुनिया में राजनीति को अर्थनीति से अलग नहीं किया जा सकता और यूरोपीय संघ ने समझ लिया है कि शीत युद्ध के बाद के दौर में अपनी आर्थिक रणनीति में भी उसे और बड़ी राजनीतिक भूमिका निभानी होगी।

परिणामस्वरूप हाल के वर्षों में यूरोपीय संघ ने भारत सहित और अधिक देशों के साथ राजनीतिक सूत्र जोड़ने के द्वार खोल दिए हैं। इसका उद्देश्य उन देशों के साथ आपसी समझ-बूझ बढ़ाना और उनके जटिल राजनीतिक तथा सुरक्षा संबंधी मसलों को समझना है, जिनके साथ यूरोपीय संघ के रिश्ते हैं।

वर्तमान दौर में यूरोपीय संघ के साथ भारत के संबंध मुख्यतया आर्थिक विषयों पर हैं न कि राजनीतिक या सुरक्षा संबंधी विषयों पर। भारत ने यूरोपीय संघ के साथ द्वि-पक्षीय सहयोग को औपचारिक रूप 1973 और 1981 में दिया और इस तरह का तीसरा समझौता 1994 में हुआ। 1994 का समझौता 1991 से भारत की आर्थिक उदारीकरण की नीति के विकास के संदर्भ में महत्वपूर्ण था। आर्थिक उदारीकरण के फलस्वरूप उभरे नए अवसरों तथा एशियाई देशों के साथ नए रिश्ते कायम करने की यूरोपीय संघ की इच्छा के कारण 1990 के दशक में भारत और यूरोपीय संघ के बीच आदान-प्रदान काफी बढ़ गया। यूरोपीय संघ इस समय भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार, सीधे विदेशी पूँजी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत, विकास सहायता का सबसे प्रमुख अंशदाता, प्रौद्योगिकी का महत्वपूर्ण स्रोत तथा बड़ी संख्या में संपन्न प्रवासी भारतीयों का घर है।

1993 के बाद से भारत और यूरोपीय संघ के व्यापार में वृद्धि भी हुई है और विविधता भी आई है। भारत का एक-तिहाई निर्यात इन देशों को होता है। 2001 में द्विपक्षीय व्यापार लगभग 25.02 अरब यूरो था। यह हमारे कुल निर्यात का 26 प्रतिशत तथा आयात का 25 प्रतिशत है। परंतु यूरोपीय संघ के लिए भारत का निर्यात की दृष्टि से 17वाँ और आयात की दृष्टि से 20वाँ स्थान है।

भारत का व्यापार आज भी कपड़ा, कृषि तथा समुद्री उत्पादों, हीरे-जवाहरात, चमड़ा और इंजीनियरी एवं इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद जैसी परंपरागत वस्तुओं के निर्यात के रूप में होता है। परंतु पिछले 5 वर्षों से रसायन, गलीचे, ग्रेनाइट और इलेक्ट्रॉनिक आदि कुछ क्षेत्रों में व्यापार काफी बढ़ा है। भारत के आयात में मुख्य रूप से हीरे-जवाहरात, इंजीनियरी सामान, रसायनों और खनिजों का स्थान रहा है। यूरोपीय संघ भारत में सीधे विदेशी पूँजी निवेश के प्रमुख स्रोतों में से एक है। इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, बेल्जियम, इटली और हॉलैंड जैसे देशों का इस निवेश में बहुत बड़ा हिस्सा है। 1999 में यूरोपीय संघ की ओर से भारत में सीधे विदेशी पूँजी निवेश 1.1 अरब यूरो का था, जबकि भारत की ओर से यूरोपीय संघ में यह निवेश 6 करोड़ 90 लाख यूरो का था।

आर्थिक सहयोग का एक रचनात्मक पक्ष यह रहा है कि भारत में यूरोपीय संघ के निवेश का स्वरूप बदला है और अब यह निवेश बुनियादी ढाँचे, विशेष रूप से बिजली तथा दूरसंचार सेवाओं के विकास में हो रहा है। औद्योगिक मशीनों, परिवहन, बिजली तथा इलेक्ट्रॉनिक्स, कपड़ा उद्योग, रसायन और परामर्श क्षेत्रों में यूरोपीय संघ द्वारा पूँजी लगाई जा रही है। एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि यूरोपीय आयोग के भारत में काफी संख्या में विकासपरक कार्यक्रम चल रहे हैं जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य तथा पर्यावरण को प्राथमिकता दी जा रही है। इसका मुख्य उद्देश्य आर्थिक रूप से पिछड़े तथा उपेक्षित वर्गों को फायदा पहुँचाने वाली परियोजनाओं को सहायता उपलब्ध कराके मानव विकास को बढ़ावा देना है।

7.3.3 आर्थिक सीमाएँ

यह तथ्य एकदम स्पष्ट है कि यूरोपीय समुदाय के लिए भारत का उतना महत्व नहीं है जितना कि भारत के लिए यूरोपीय समुदाय का है। यूरोपीय समुदाय के साथ व्यापार के मसले में भारत को कई आर्थिक सीमाओं का सामना करना पड़ रहा है।

- सबसे पहली बात तो यह है कि भारत और यूरोपीय संघ के बीच व्यापारिक संबंध असमान हैं। हालांकि भारत के लिए यूरोपीय संघ सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार है, परंतु उसे यूरोपीय समुदाय के व्यापार, विशेष कर आयात का लक्ष्य बनने के लिए अभी बहुत कुछ करना होगा क्योंकि संघ के आयात में भारत का हिस्सा केवल एक प्रतिशत है।

- दूसरी सीमा यह है कि भारत अभी तक यूरोपीय संघ से पर्याप्त निवेश आकर्षित नहीं कर पाया है। यूरोपीय संघ द्वारा विश्व-भर में किए जा रहे निवेश का सिर्फ एक प्रतिशत भाग ही भारत में होता रहा है और उसमें भी 1990 के दशक में पश्चिमी यूरोप तथा मध्य एशिया में नई अर्थव्यवस्थाएँ उभरने के बाद कमी आ गई।

- भारत यूरोपीय संघ के बाज़ार का लाभ उठाने में सफल नहीं हो पाया है क्योंकि इसके निर्यात का 70 प्रतिशत हिस्सा केवल 4 सदस्य देशों - इंगलैंड, जर्मनी, इटली और बेल्जियम-लक्ज़मबर्ग - तक सीमित है।

- भारत से कुछ संसाधन-आधारित वस्तुओं (कपड़ा, चमड़ा और मोतियों) का ही निर्यात किया जाता है।

7.3.4 व्यापारिक विवाद

यूरोपीय संघ द्वारा लगाए गए कुछ प्रतिबंधों के कारण भी भारत को अपने निर्यात बाज़ार का विस्तार करने में दिक्कतें आ रही हैं। सबसे पहले तो कपड़ा, जूतों और वस्त्रों के निर्यात के मामले में भारत को ऊँचे सीमा शुल्कों तथा कुछ अन्य प्रतिबंधों के कारण दोहरा नुकसान उठाना पड़ता है। पिछले कुछ समय से सीमा-शुल्क संबंधी बाधाएँ धीरे-

धीरे कम हो रही हैं परंतु कई तरह के गैर-सीमा शुल्क प्रतिबंध लगाकर संरक्षणवाद को बढ़ावा दिया जा रहा है। यूरोपीय संघ को निर्यात में भारत को स्वास्थ्य, स्वच्छता तथा पर्यावरण के मानकों के रूप में गैर-सीमा शुल्क संबंधी प्रतिबंध झेलने पड़ते हैं। मल्टी-फाइबर अरेंजमेंट (एम.एफ.ए.) के अंतर्गत 1972 से भारतीय कपड़े पर मात्रा संबंधी प्रतिबंध लगे हुए हैं। हाल में तकनीकी मानकों तथा नियंत्रणों में अधिक तालमेल के नाम पर तकनीकी बाधाएँ भी खड़ी की गई हैं। इसके अलावा, वस्तुओं पर श्रम तथा पर्यावरण मानक तय किए हैं और एंटी-डंपिंग कदम उठाए गए हैं जिनसे यूरोपीय संघ में संरक्षणवादी उपाय सामने हैं। फलस्वरूप भारत के व्यापार पर प्रतिकूल असर पड़ा है।

7.4 सारांश

शीत युद्ध के दौर में सुरक्षा संबंधी मसलों पर अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कारण भारत-अमेरिकी संबंध तनावपूर्ण बने रहे। अमेरिका ने गठबंधन नीति अपनाई जबकि भारत गुटनिरपेक्ष नीति पर चलता रहा।

शीत युद्ध, उपमहाद्वीप में पाकिस्तान की आक्रामक नीति तथा क्षेत्र में परमाणु शस्त्रों के प्रसार के कारण द्वि-पक्षीय संबंधों में बराबर उतार-चढ़ाव आते रहे हैं।

शीत युद्ध के बाद संबंधों में खासा सुधार हुआ। मई 1998 में भारत के परमाणु परीक्षणों से इन संबंधों को अस्थायी तौर पर झटका लगा परंतु 11 सितंबर, 2001 को अमेरिकी ठिकानों पर आतंकवादी हमले के बाद दोनों देशों के बीच सहयोग के नए अवसर पैदा हुए। कश्मीर तथा इराक पर राजनीतिक मतभेदों के बावजूद भारत और अमेरिका ने संबंधों में सुधार की प्रक्रिया में रुकावट नहीं आने दी है। शिमला समझौते के प्रति अमेरिका का समर्थन भारत को स्वीकार्य है। अमेरिका ने कश्मीर मसले में मध्यस्थता करने से इनकार कर दिया है क्योंकि भारत तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप का विरोध करता आया है। आतंकवाद विरोधी उपायों पर आपसी मतभेद होने पर भी दोनों देश आतंकवादी गुटों का सामना करने में सहयोग को मज़बूत करने से पीछे नहीं हटे हैं। आतंकवाद पर संयुक्त कार्य दल की अक्सर बैठकें होती हैं और दोनों देशों के अधिकारी आतंकवाद से निपटने के तरीकों पर विचार करते हैं।

भारत और अमेरिका के बीच रक्षा सहयोग में सुधार शीत युद्ध के बाद की नई घटना है। इसमें लगातार सुधार हो रहा है। दोनों देशों की सेनाएँ संयुक्त सैनिक अभ्यास कर रही हैं, रक्षा संबंधी गुप्त सूचनाओं का आदान-प्रदान हो रहा है तथा इक्कीसवीं सदी की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए दोनों देश मिलकर सैनिक रणनीतियाँ विकसित कर रहे हैं। पाकिस्तान के साथ अमेरिकी निकटता अब भारत की विदेश नीति तैयार करने वालों के लिए चिंता का विषय नहीं रही है क्योंकि अमेरिका ने भारत के साथ भी अपने रिश्ते काफी सुधार लिए हैं।

भारत-अमेरिकी आर्थिक संबंध भी निरंतर सुधर रहे हैं। परंतु अमेरिका की तरफ से अभी

भारत महत्वपूर्ण व्यापारिक भागीदारी या निवेश का लक्ष्य नहीं बन पाया है। दोनों में असमान व्यापार है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। दोनों देशों के भावी संबंध मुख्य तौर पर आर्थिक सहयोग के स्वरूप पर निर्भर करेंगे। आर्थिक रिश्ते सामान्यतया रक्षा और सुरक्षा संबंधों के मुकाबले अधिक मज़बूत होते हैं।

शीत युद्ध के युग में यूरोपीय संघ के साथ भारत के रिश्ते मुख्यतया आर्थिक थे क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में इस संगठन की कोई भूमिका नहीं थी। यूरोपीय संघ भारत के लिए न केवल सबसे बड़ा सामूहिक क्षेत्रीय बाज़ार है बल्कि यह भारतीय आयात का सबसे बड़ा स्रोत भी है। भारत यूरोपीय संघ के सदस्य देशों से आर्थिक विकास सहायता और विदेशी पूँजी निवेश के माध्यम से भी काफी लाभान्वित होता है।

यूरोपीय संघ तथा भारत के बीच कई व्यापारिक विवाद हैं। लेकिन अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में विवाद होना सामान्य बात है। इसलिए इनके कारण दोनों पक्षों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों में कोई बिगाड़ नहीं आने दिया गया है।

भारत ने शीत युद्ध की समाप्ति के बाद विश्व मामलों में अधिक राजनीतिक भूमिका निभाने की यूरोपीय संघ की इच्छा को समझा है। इसलिए इसने उसके साथ कई बार राजनीतिक स्तर पर विचार-विमर्श किया है। ऐसे विचार-विमर्श का उद्देश्य राजनीतिक मसलों पर गलत धारणाएँ दूर करना और आपस में राजनीतिक सूझ-बूझ बढ़ाना है।

विश्व मामलों में यूरोपीय संघ के बढ़ते हुए महत्व के साथ ही एक बड़ी शक्ति के रूप में भारत की महत्ता बढ़ी है। भारत और यूरोपीय संघ के बीच पहली शिखर बैठक 2000 में हुई और उससे यह संकेत मिला कि भारत तथा यूरोपीय संघ के सदस्य देश राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से सहयोग बढ़ाने को कृत-संकल्प हैं। शिखर बैठक में यह बात सामने आई कि ऊर्जा, दूरसंचार तथा सूचना प्रौद्योगिकी आदि नए उभरते क्षेत्रों में भारत तथा यूरोपीय संघ आपसी सहयोग की व्यवस्थाओं से काफी लाभ उठा सकते हैं।

7.5 अभ्यास

1. शीत युद्ध के दौर में भारत तथा अमेरिका के बीच राजनीतिक मतभेदों का विवेचन कीजिए।

2. शीत युद्ध की समाप्ति पर भारत तथा अमेरिका के बीच नए संबंधों की शुरुआत का ब्यौरा दीजिए।

3. शीत युद्ध के बाद के दौर में भारत तथा अमेरिका के बीच किन क्षेत्रों में मतभेद हैं?

4. भारत के विदेश संबंधों में यूरोपीय संघ का क्या महत्व है?

5. भारत तथा यूरोपीय संघ के बीच मुख्य आर्थिक मतभेद क्या हैं?

6. यूरोपीय संघ और भारत के बीच राजनीतिक मतभेदों का ब्यौरा दीजिए।

7. भारत-यूरोपीय संघ संबंधों की मुख्य सीमाएँ क्या हैं?

KEXAMS